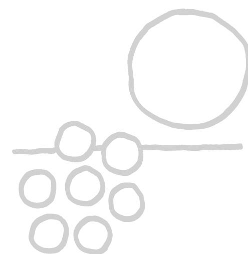


सतत एवं समग्र मूल्यांकन

एक आलोचनात्मक छानबीन

हृदयकांत दीवान

आकलन की बात बहुत हो रही है। यह कहा जा रहा है कि परीक्षा नहीं होने और सभी को अगली कक्षा में ले जाने से बच्चों का सीखना कम हो गया है। उन्होंने पढ़ाई करना बंद कर दिया है और शिक्षकों ने पढ़ाना।

पालकों को यह पता करने में कठिनाई है कि बच्चे कुछ मेहनत कर रहे हैं कि नहीं और शिक्षक कुछ पढ़ा भी रहे हैं अथवा नहीं। वहीं, दूसरी ओर बच्चे व शिक्षक परेशान हैं कि हर दो हफ्ते में कोई न कोई बच्चों से हल करवाने के लिए प्रश्न-पत्र लेकर आ जाता है। शिक्षकों को आकलन की तथाकथित परीक्षा रहित सतत एवं समग्र मूल्यांकन (सीसीई) प्रणाली के लिए प्रशिक्षण दिया जा रहा है व प्रश्न-पत्र दिए जा रहे हैं जो उन्हें नियत समय पर करवाने हैं। हर तरफ रचनात्मक (फोरमेटिव) और योगात्मक (समेटिव) प्रश्नों की चर्चा हो रही है और उन प्रारूपों को भरने की जो सीसीई के लिए चाहिएं। संकुल अधिकारी, ब्लॉक अधिकारी से लेकर जिला, राज्य और राष्ट्र स्तर के अधिकारी व शिक्षाशास्त्री इनके भरे जाने को लेकर चिंतित हैं। यानी परीक्षा को कानून के अक्षरों से हटाकर उसके स्थान पर तरह-तरह के आकलनों का ढांचा खड़ा कर दिया गया है, जिस पर पीड़ा यह कि आकलन नहीं हो रहा है और परीक्षा नहीं हो रही है। परीक्षा व आकलन की यह कमी क्यों महसूस की जा रही है? क्या यह चिंता जायज है और इस चिंता का असर क्या है? यह किस दिशा की ओर ले जा रही है और क्या इस परिस्थिति का विश्लेषण ठीक ढंग से हुआ भी है?

इस प्रश्न पर चर्चा बच्चों की क्षमताओं, उनकी स्वतः सीखने की आवश्यकता, इच्छा व समाज में शिक्षा की जगह, उद्देश्यों की विविधता, शिक्षा की व्यवस्था व उसका संचालन और कुल मिलाकर कहें तो शिक्षा का अर्थ व उसका समाज से रिश्ता खंगाले बिना नहीं की जा सकती। सबसे पहले बच्चों की क्षमता के बारे में।

बच्चों की सीखने की क्षमता

पैदा होने के साथ से ही इंसानी बच्चा सीखने लगता है। वह क्या-क्या सीख लेता है इसकी सूची असीमित है। एक छोटे बच्चे के बारे में कल्पना करके आप ही देख सकते हैं कि एक तीन-चार साल का बच्चा क्या-क्या कर सकता है और करता है। यह सब कर पाने के लिए उसे क्या-क्या आना चाहिए तभी वह, यह सब कर पाएगा। यह भी सोचना महत्त्वपूर्ण है कि उसकी सीखने की प्रक्रिया क्या है और कैसी है? कैसी परिस्थिति उसे सीखने को प्रेरित कर पाती है और किसमें उसका सीखना मुश्किल है? यह प्रश्न इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि हम वापस परीक्षा आधारित व्यवस्था की ओर यह मानकर लौटना चाहते हैं कि ऐसी व्यवस्था ही बच्चों को सीखने की प्रेरणा देगी।

इस कल्पना में यह सर्वोपरि है कि बच्चों का सीखना वयस्कों के उनके सीखने के प्रति रवैये पर ही पूरी तरह आधारित है। हमारे छोटे-छोटे व्यक्तिगत अनुभवों व उन्हें जिस चश्मे से देखा गया है, उससे ऐसा अहसास मिलता है मानो सीखने वाला गीली मिट्टी है जिसे हम तोड़-मोड़कर जैसे चाहें वैसे ढाल सकते हैं। परीक्षा आधारित सीखने पर जोर बच्चों की सीखने की स्वभाविक क्षमता, प्रक्रिया व इच्छा को नजरअंदाज तो करता ही है, साथ ही उस पर कुठाराघात भी करता है।

बच्चों व माता-पिता के लिए शाला का विमर्श सार्थक नहीं है। उनकी इसमें कोई महत्त्वपूर्ण साझेदारी नहीं है और उनसे किसी प्रमुख मसले पर विचार देने अथवा मदद करने की कोई अपेक्षा नहीं है। शिक्षा की दृष्टि, तरीके व सामग्री से कटाव के कारण व शिक्षा के लक्ष्यों के विमर्श में न शामिल हो पाने के कारण माता-पिता की शिक्षा से कोई सार्थक अपेक्षा नहीं करते। वह क्या सीख रहा है, उसका जीवन में क्या उपयोग है, इस पर कोई विमर्श नहीं है। इस मसले से जूझने के लिए स्कूली व्यवस्था के पास माता-पिता से बात करने का, उन्हें कार्य में मदद करने का, उनकी बात समझने और उसके उपयोग का कोई ढांचा नहीं है।

परिणामों के निहितार्थ

बच्चों के परीक्षा परिणामों के बारे में चर्चा करने से पहले परीक्षा में अच्छा करने या न करने के बारे में भी चर्चा करने की आवश्यकता है। इस संदर्भ में एक प्रश्न तो यह है कि उनका अच्छा न कर पाना क्या टेस्ट की प्रकृति व उसके संचालन से संबंधित है? क्या परीक्षण उनका संपूर्ण आकलन करता है? यदि नहीं तो किस बात का कर पाता है? आजकल स्कूलों की परीक्षाओं को ज्यादा व्यापक स्तर पर करने व अंतर्राष्ट्रीय व राष्ट्रीय स्तर पर परीक्षणों द्वारा तुलना पर ज़ोर है। ऐसे में दूसरा प्रश्न यह भी है कि स्कूल व शिक्षा का उद्देश्य क्या है व इस तरह के परीक्षणों के आधार पर स्कूलों का स्तर तय करना व बच्चों के स्कूल आने की सार्थकता को तय करना कितना उचित है? शिक्षा को व्यापक संदर्भ में देखने पर, पढ़-लिख पाना व गणित के औपचारिक सवाल कर पाना व ब्रह्माण्ड की जानकारी बता पाना कितना महत्त्वपूर्ण व आवश्यक है? इस तरह के दबावों व एक समय पर निर्धारित कागज-पेंसिल वाली क्षमताएं हासिल करने का जोर स्कूल के अर्थ व कार्य प्रणाली पर क्या असर डालेगा?

यह सारे प्रश्न इस बात से जुड़ते हैं कि हम शिक्षा व स्कूल का उद्देश्य क्या मानते हैं व उसमें सीखने वाले की भागीदारी व रुख को किस तरह से देखते हैं? क्या स्कूल का लक्ष्य मात्र बच्चों को अर्थ व्यवस्था में शामिल होने के लिए तैयार करना है अथवा कुछ और है? क्या परीक्षा व परीक्षणों से बच्चों के स्कूली अनुभव की ठीक-ठीक जांच हो सकती है? स्कूल की औपचारिक सख्त नियमबद्ध व्यवस्था में अधिकतर परिस्थितियों में उसके लिए अलग-अलग ढंग से सीखने के मौके नहीं हैं। स्कूल से बाहर खासतौर से घर में जिस परिस्थिति में वह सीखता है उसमें उसकी व उसके सीखने की अहमियत होती है और उसे ज्यादा विश्वास दिलाया जाता है कि वह सीखेगा ही या उसे सीखना ही है।

बच्चा क्या-क्या जानता है

3-4 साल का बच्चा भाषा का उपयोग सीख लेता है और अपने संदर्भ में हर तरह के विचारों व अवधारणाओं को व्यक्त करने की क्षमता हासिल कर लेता है। वह न सिर्फ सही व्याकरण के रूपों का उपयोग करता है वरन नए वाक्यों

में भी सभी शब्दों को उपयुक्त स्थान पर रख पाता है। वह यह भी जानता है कि वाक्य में शब्दों का क्रम बदलने पर अर्थ बदल सकता है अथवा अर्थ नहीं भी रह सकता है। पूरे वाक्य के स्थान पर टुकड़े में भी बात समझ पाता है। उसे गणना व मापन का अहसास तो है ही पर साथ-साथ आकृतियों से भी खेल पाता है। यह सब लगभग हर बच्चा ही सीख लेता है। घर का हर वह काम जिसकी जरूरत हो वह कर पाता/पाती है। फिर यह समझना तो आवश्यक है कि यह समझदार व काबिल बच्चा स्कूल में क्यों मंदबुद्धि बन जाता है? ऐसा क्यों है कि घर में हर काम करने वाली बच्ची को उस श्रेणी में डाल दिया जाता है जो कभी कुछ न सीख पाने वालों की है। स्कूली ज्ञान व उसे बच्चे तक पहुंचाने के तरीकों व दृष्टिकोण में ऐसे क्या तत्व हैं जो यह करते हैं? और इन तत्वों की कम करने का, आकलन की मौजूदा समझ व बाह्य परीक्षा से क्या कोई सकारात्मक रिश्ता हो भी सकता है?

यह सक्षम बच्चा जो स्वतंत्र, निडर व अपने जीवन के बहुत से फैसले लेकर उन्हें क्रियान्वित करने में मशगूल रहता है, पढ़ाई में ऐसा क्यों नहीं कर पाता? या फिर ऐसा है कि वह तो करता है (कम से कम कोशिश तो करता ही है) किंतु हम उसके प्रयास को देख नहीं पाते। उसके आगे बढ़ने को देखने-समझने लायक चश्मा हमारे पास नहीं है।

स्कूल व परीक्षा क्यों

हम यह तो मान सकते हैं कि स्कूल का अर्थ व्यवस्थित रूप से सिखाने का प्रयास करना है। अतः क्या सिखाना है और कैसे सिखाना है, इसके बारे में व्यवस्थित रूप से सोचना महत्त्वपूर्ण है। हर बच्चे को स्कूल में उस तरह के मौके व मदद नहीं मिल सकती जैसी घर पर मिलती है। उसे अन्य बहुत से बच्चों के साथ ही सीखना है व हर पल अपनी गति व अपने ढंग से नहीं चल सकता। उसको अलग-अलग ढंग से सीखने के मौके नहीं हैं। जिस परिस्थिति में वह घर पर सीखता है उसमें उसकी अहमियत होती है। उसे भरोसा दिलाया जाता है कि वह सीख ही लेगा। इसके लिए उसे परीक्षा में 40% लेकर पास नहीं होना होता, स्कूल का तिरस्कार व अलगाव नहीं होता।

उसे जो सीखना होता है वह सीधे-सीधे उसके जीवन के लिए उसे व सबको आवश्यक लगता है। सवाल यह भी है कि स्कूल का पाठ्यक्रम व स्थापित ज्ञान इन सबसे इतना अलग क्यों है? यह भी सही है कि स्कूल का ज्ञान संदर्भ में डूबा नहीं हो सकता। वह तात्कालिक अनुभवों व स्वयं के तर्कों से रचा नहीं जा सकता किंतु फिर भी यह सवाल तो है ही कि इस प्रक्रिया का बच्चे के जीवन से क्या लेना-देना है और यह भी सोचना होगा कि हम यह सब जद्दोजहद क्यों करना चाहते हैं? बच्चा तो सीख ही लेता है जो उसे चाहिए तो फिर स्कूल क्यों? इस संदर्भ में दो और बिंदुओं पर सोचना जरूरी है। 1. यह मानते हुए कि बच्चे इन परीक्षाओं व परीक्षणों में अच्छा नहीं कर पाते, यह जानना जरूरी कि यह परीक्षण क्या जानने का प्रयास कर रहे हैं? 2. बच्चों के संदर्भ से सोचें तो शिक्षा की वर्तमान संरचना व उससे जुड़ी पाठ्यचर्या उन्हें उत्साहित करने व बांधने में कितनी सक्षम है?

परीक्षा का परिप्रेक्ष्य

यदि स्कूल की परीक्षा में मूल्यवान समझी जाने वाली बातें, उन्हें सीखने की मात्रा, दिशा व आवश्यकता बच्चों के लिए इतनी अलग-अलग हैं तो फिर परीक्षा के उद्देश्य व मानक क्या होने चाहिएं? क्या शिक्षा व ज्ञान का स्वरूप व्यापक करें या जीवन जीने में सक्षम बच्चों को मंदबुद्धि घोषित करें? क्या हमारे अभी तय किए गए स्तर व उनके मानक उचित हैं? ऐसा प्रतीत होता है कि परीक्षा का पूरा ढांचा खास तौर पर तथाकथित मानक (स्टैण्डर्ड) परीक्षण व सबसे अधिक तो यह बाह्य परीक्षण व परीक्षाएं बच्चों के सीखने में सुधार के बारे में नहीं सोचते। वह तो सीखे जाने का जश्न मनाने की जगह बच्चों की कमियां बताते हैं और उनके सीखने में गैप ढूंढ़ते रहते हैं।

यह सही हो सकता है कि गैप/कमी ठीक से ढूंढ़कर व कारण पहचान कर उन्हें बच्चों के साथ सकारात्मक तरीके से बांटा जाए। किंतु हमारी परीक्षा के ढांचे का वह लक्ष्य प्रतीत ही नहीं होता है। हम यही देखना चाहते हैं कि तथाकथित मानक परीक्षा में वह कहां तक पहुंचे हैं।

मापदण्ड सतत एवं समग्र मूल्यांकन व परीक्षा

इस तर्क को थोड़ा आगे बढ़ाएं तो ऐसी मांग भी करनी चाहिए कि हर बच्चे के विकास का आकलन कुछ तयशुदा मापदण्डों पर हो। जैसे उम्र के इस महीने तक हर आठ साल के बच्चे को चार फुट तीन इंच का तो हो ही जाना चाहिए। अथवा हर बच्चे को 200 मीटर 28 सैकण्ड में तो दौड़ ही जाना चाहिए। ऐसी मांग करना हमें भी अजीब लगता है किंतु स्कूल के पढ़ाई-लिखाई के कार्यक्रम के लिए फिर यह क्यों सही है, और यह भी सोचना होगा कि स्कूल के उद्देश्यों के संदर्भ में बाकी उद्देश्यों को नजरअंदाज करने का कारण क्या है और इसका क्या असर हो सकता है? इस विश्लेषण से हम यह भी समझेंगे कि सतत एवं समग्र मूल्यांकन (सीसीई) सिर्फ आकलन का अलग नजरिया नहीं है वह शिक्षा के लक्ष्यों व उसकी व्यवस्था में किन लोगों की प्रमुख भूमिका होनी चाहिए उसका भी नजरिया है। वह शिक्षा प्रशासन के ढंग पर भी टिप्पणी है और उस ढांचे में परिवर्तन और उसे अपने-आपको बदलने की मांग व उसे आगे बढ़ने की दिशा भी दिखा सकता है। इस संदर्भ में सीसीई के जिस स्वरूप को पिछले 5 सालों में रचने का प्रयास किया गया है उसका परीक्षण आवश्यक है।

सतत एवं समग्र मूल्यांकन क्या है

परीक्षा को ज्यादा महत्त्वपूर्ण व सटीक बनाने के तर्क के संदर्भ में यह सोचना होगा कि सीसीई क्या है? सीसीई के पूरे रूप में (Continuous) शब्द है जिसका अर्थ है- लगातार जारी और समग्र (Comprehensive) शब्द है, जिसका अर्थ है- संपूर्ण, जिसमें हर पहलू शामिल हो। यहां संपूर्ण व हर पहलू शामिल करने के महत्त्व पर भी विचार करना होगा। इसे शामिल करने का अर्थ क्या संगीत, नाटक, खेल, नृत्य आदि के महत्त्व को बढ़ाना है या फिर तथाकथित साधारण पाठ्यचर्या में माने गए प्रमुख कागज-कलम युक्त हिस्सों यथा गणित, विज्ञान, सामाजिक अध्ययन, साहित्य आदि के महत्त्व को घटाकर पढ़ाई-लिखाई व जीवन के अन्य पहलुओं को संतुलित करना? सीसीई को 'सीसीई' कहें या 'सीसीए' इस पर भी काफी विमर्श हुए हैं। 'E' और 'A' में परीक्षण व आकलन का फर्क है। यह फर्क सिर्फ शाब्दिक समझ माना जा सकता है अथवा उसे एक ज्यादा व्यापक अंतर के अहसास के रूप में माना जा सकता है? यहां तीनों शब्दों की भावना व इनसे निकलने वाली धारणा को समझना जरूरी है। इसके बाद ही हम अपनी राय बना सकते हैं।

सीसीई का उद्देश्य

हम परीक्षण क्यों करवाते हैं? बच्चे के लिए अथवा शिक्षक के काम या ढांचे के लिए? नतीजे क्या बता सकते हैं, क्या नहीं? व्यक्तित्व के सभी हिस्सों के आकलन की आवश्यकता यदि इसलिए है क्योंकि हम हर बच्चे को सकारात्मक फीडबैक दे पाएं और उसे सीखने के रास्ते पर आगे बढ़ा पाएं तो फिर सीसीई का स्वरूप कैसा हो? क्या उसमें सभी शालाओं और वास्तव में तो क्या सभी बच्चों के लिए एक-सा तरीका होना चाहिए? क्या उसका स्वरूप भी अलग-अलग होना चाहिए? अभी तरीका, स्वरूप और यहां तक कि किस ज्ञान का परीक्षण होना है, वह भी एक समान तय किया जाता है। बाह्य परीक्षाओं की मांग बढ़ती जा रही है और हाल के कुछ वर्षों में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सक्रिय कुछ परीक्षा विशेषज्ञों के जोश के चलते राष्ट्रों में परीक्षणों व पारस्परिक तुलना की होड़ लगी है। यह तुलना शिक्षा के संपूर्ण स्वरूप व उद्देश्य के एक बहुत ही छोटे हिस्से पर केन्द्रित है। हमारे पास प्रशिक्षकों के क्षमतावर्धन के लिए व्यक्ति व धन दोनों ही स्रोतों की कमी हो सकती है किन्तु इन परीक्षणों के लिए स्रोतों की कोई कमी नहीं। परीक्षणों के नतीजों के चलते, उन नतीजों को सुधारने हेतु बहुत से प्रयास व उन्हें चला रही संस्थाएं भी सक्रिय हो गई हैं। इनके लिए व स्कूल की व्यवस्था को चलाने वालों के लिए स्कूल व शिक्षा का उद्देश्य इन परीक्षणों में अपने प्रदर्शन को सुधारना बन गया है।

शिक्षा की समझ व लक्ष्यों को व्यापक करने का प्रयास, उसमें सभी की रुचियों व क्षमताओं को स्वीकार करने का जो कदम लिया गया था उस पर लगातार हमला हो रहा है। यह भी कहा जा रहा है कि सीसीई के चलते ही हमारे स्कूलों का सीखने-सिखाने व उपलब्धि का स्तर गिरा है।

क्या हम सीसीई बंद करने की बात कर सकते हैं? जो शुरू ही नहीं हुआ उसे बंद कैसे करेंगे? सीसीई के मूल में यह है कि आकलन का उद्देश्य बच्चों के हुनर पहचान कर उनको बढ़ावा देना है व उन्हें आगे सीखने में मदद करना है। इसमें शिक्षक व छात्र के बीच चर्चा व शिक्षकों की प्रमुख भूमिका अनिवार्य है।

इस प्रकार कक्षा का संचालन करने की छूट को क्या ढांचा स्वीकार करता है? हमारी शिक्षा व्यवस्था में चाहे वह सरकारी स्कूल हो, चाहे वह निजी स्कूल; शिक्षक को बच्चों के हिसाब से चलने की छूट नहीं है। वह यह नहीं कह सकता कि यह बच्चा दूसरे बच्चों से बेहतर है किन्तु यह ज्यादा मेहनत कर रहा है और इसलिए उसे बेहतर रिपोर्ट मिलनी चाहिए। यह बात हम लोग अनुभवजनित मानते हैं कि यदि कोई भी आंतरिक आकलन पूरे मूल्यांकन का हिस्सा होता है तो उसमें यही नतीजा दिखता है कि आंतरिक आकलन में सभी उत्तम प्रतीत होते हैं। हमने प्रायोगिक परीक्षा बंद कर दी क्योंकि न सिर्फ आंतरिक परीक्षक बल्कि बाह्य परीक्षक भी दबाव में आ जाते हैं। इन नतीजों की अपारदर्शिता के चलते और पारस्परिक शक के कारण अत्यधिक नियम गठन बढ़ता जा रहा है। एक उल्लंघन से बने बनाए बड़े ढांचे में शक का बीज पनपने लगता है।

हमारा संविधान वायदा करता है कि हर व्यक्ति को अपनी क्षमता, इच्छा के अनुरूप पूरे विकास का अवसर मिलेगा। एनसीएफ बढ़-चढ़कर शिक्षक की संपूर्णता व स्वायत्तता की बात करता है और यह समझाने का प्रयास करता है कि स्कूल में हर तरह के विकास की संभावना होनी चाहिए। इन संदर्भ में परीक्षणों, उससे जुड़ी परीक्षा और वह भी बाह्य परीक्षा इस वायदे से हमें कितनी दूर ले जाएगी? यह पूरी कवायद शिक्षा को उसके वृहद दायरे से संकुचित कर किताब-कॉपी तक सीमित कर देगी। शिक्षक, स्कूल व ढांचे को शिक्षा के संपूर्ण स्वरूप का विकास करने का मौका होना चाहिए न कि परीक्षणों में अच्छा करने के लिए व परीक्षण के लिए पढ़ाने का।

परीक्षा व परीक्षण शुरू करते ही पाठ्यक्रम घटकर पूछे जाने वाले सवालों तक सिमट जाता है। परीक्षा के डर से कुछ नहीं सीखा जा सकता। वह याद किया मसौदा परीक्षा उपरान्त फिर साफ हो जाता है। ऐसे परीक्षण ही सार्थक हैं जिनमें शिक्षक व परीक्षक यह पता करने के प्रयास के लिए स्वतंत्र हैं कि इस छात्र की क्या-क्या रुचि हैं व उसे क्या-क्या किस गहराई तक आता है और वह इसके बारे में कैसे सोचता है। ऐसी परीक्षा, पास-फेल के लिए नहीं, प्रशासकों को 'सब ठीक है' जानने के लिए नहीं, किसी शिक्षा अथवा प्रधान पाठक को सस्पैंड करने अथवा छोटा दण्ड देने के लिए नहीं, शिक्षक व बच्चे के लिए व सीखने में मदद के लिए शिक्षक के नियंत्रण में ही हो सकती है।

पिछले दशक में सभी का ध्यान शाला के होने के फायदों व नतीजों पर केन्द्रित किया गया है। हर कुछ महीने में अखबारों व पत्रिकाओं में स्कूल व्यवस्था को नकारा बताती हुए किसी अध्ययन की रिपोर्ट छपती है। रिपोर्ट में बच्चों की नाकामियों का विस्तृत वर्णन किया जाता है। हर वर्ष लगभग हर बोर्ड के बारे में रिपोर्ट छपती है कि हमें इस बार भी कुछ अतिरिक्त अंक देने पड़े और तभी बच्चे पर्याप्त प्रतिशत में पास हो पाए या फिर वह सवाल किताब से नहीं था, अतः खारिज या फिर हर तरफ ऐसे विज्ञापन भी दिखते है, 'बिना आंसुओं के पास हों', 'पास होने की गारंटी'। गेस पेपर और शिक्षकों की हिदायत कि बस यह 20 सवाल मैंने लिखवा/करवा दिए हैं, इन्हें याद कर लो तो पास हो जाओगे। ऐसे में यह सवाल वाजिब है कि इन परीक्षाओं का बच्चों के सीखने पर क्या कोई सकारात्मक असर है? उनके सीखने में, आत्मविश्वास में, स्वयं को, समाज को समझने में क्या कुछ वृद्धि हुई? यह सवाल गहराई से पूछे बिना व ऐसी परीक्षा के नफे-नुकसान का आकलन किए बिना वापस परीक्षा पर जाना गैर-तार्किक निर्णय है।

स्कूल की व्यवस्था शिक्षक को गैर-जिम्मेदार और कामचोर ही मानती है और बढ़ती ही जा रही है। और यह चिन्ता भी कि, कैसे उनसे काम करवाया जाए। उनकी तनख्वाह तो बढ़ गई, क्या काम भी बढ़ा है, क्या वह काम कर रहे हैं? उनके काम के बदलते प्रकार व उसके लिए उन्हें सक्षम बनाने का प्रयास, उनके साथ मिलकर अपनी परिस्थिति में हासिल हो पाने वाले लक्ष्यों का निर्धारण नहीं शुरू हो पाया। यह सब कागज़ पर ही हुआ। सीसीई उसी राह में एक कदम था किन्तु वह भी ढांचे की असक्षमता व उसमें व्याप्त अविश्वास के चलते केन्द्रीकृत परीक्षाओं की एक लड़ी मात्र बनकर रह गया। जिस मंशा व भावना से सीसीई को प्रशासन के विभिन्न स्तरों व ढांचों में समझा व माना, जिस ढंग से शिक्षकों ने उसको समझा व उपयोग करने के तरीके और उसमें अपनी भूमिका व जिम्मेदारी को माना,

वह तो सीसीई था ही नहीं। सीसीई की बुनियाद छात्र, शिक्षक व स्कूल के बीच के रिश्ते में है। इसमें स्कूल व शिक्षक को बच्चे के सीखने की जिम्मेदारी ही नहीं, वरन् उसके सीखने के तरीके व मात्रा की उपयुक्तता व उसे आगे बढ़ने के लिए प्रेरणा दे पाने का अधिकार भी है। ऐसे में राष्ट्रीय, राज्य, प्रखंड स्तर पर बने सीसीई फार्मेट व सीसीई के लिए जांच उपकरण, सीसीई की बुनियादी मान्यताओं व निहितार्थों के ही खिलाफ हैं।

एनसीईआरटी ने एक वृहद प्रयास में अत्यधिक केन्द्रीकरण व अति-परीक्षण के खतरों के प्रति ढांचों को आगाह करने का थोड़ा प्रयास किया। उन्होंने बहुत मेहनत से और जद्दोजहद के बाद एक ऐसा दस्तावेज बनाया जो कि न सिर्फ सीसीई के आधारों व सिद्धांतों को परिभाषित करके समझाता था बल्कि उसमें सीसीई कैसे करना है उसके लिए उदाहरण भी थे। उसमें जगह-जगह यह आग्रह किया गया था कि शिक्षक उसे समझे व समझकर खुद का रास्ता तय करे। उसे बच्चों के अनुभव और जो पढ़ाया उसके आधार पर तय करना है कि वह कब और कैसे आकलन करेगा। उस दस्तावेज व अन्य चर्चाओं में यह बार-बार कहा जा रहा है कि सीसीई का सबसे अच्छा तरीका औपचारिक परीक्षा नहीं है और शिक्षक कक्षा में सीखने-सिखाने की प्रक्रिया के आधार पर बच्चों के सीखने व जरूरतों के बारे में समझ बनाकर आगे का रास्ता तय कर सकता है।

सीसीई की समझ का कोई भी पहलू लागू नहीं हो पाया। यही समझ है कि सीसीई यानी थोड़े-थोड़े अंतराल पर परीक्षा यानी वार्षिक परीक्षा के स्थान हर महीने या फिर हर हफ्ते ही परीक्षा। ऐसा इसलिए कि कई बार परीक्षा होने से बच्चे व अध्यापक ज्यादा सचेत रहेंगे। पूरा समाज, खासतौर पर अधिकारी व प्रशासक यही मानते हैं कि शिक्षकों व स्कूलों को आकलन की जिम्मेदारी नहीं दी जा सकती। उन्हें लगता है कि बहुत गड़बड़ होगी। शिक्षकों व स्कूल को सही आकलन व उसकी सही जांच का महत्त्व नहीं पता और वह इसे ठीक से नहीं करना चाहते। इसलिए सीसीई यानी बाह्य परीक्षकों द्वारा संचालित ज्यादा बारंबारता वाली परीक्षा। शिक्षक को इसका विश्लेषण भी करने का मौका नहीं है।

स्कूल पर निर्धारित सीसीई ही सभी विविधताओं वाले बच्चों को शामिल करने में सक्षम हो सकती है। उम्र के अनुरूप कक्षा दाखिला इस पर टिका है कि अतिरिक्त समय देना 3-6 महीने में उसे अभी की कक्षा के स्तर तक ले आया जाए। यह आदेश यह नहीं सोचता कि बच्चे की पृष्ठभूमि क्या है? वह कितना केन्द्रित है, स्कूल परिस्थिति क्या है, कितना समय शिक्षकों के पास है, और यह भी कि क्या यह इतने समय में संभव भी है? नियम व आदेश बनाते समय विवेक, जिम्मेदारी, ईमानदारी की अनुपस्थिति का अनुमान लगाकर ही कुछ कहा जाता है। क्या हम यह कर पाएंगे? क्या सीसीई बच्चों की क्षमता, शिक्षक व स्कूल पर विश्वास कर, उसे सक्षम बनाने में और बच्चे को स्वयं को व्यक्त करने, सीख पाने में सक्षम बना पाएंगे?

परीक्षण करने वाले न तो एनसीएफ पढ़ते हैं अथवा आधार पत्र को समझते हैं, न ही वह शिक्षा के समाज से रिश्ते के बारे में सोचते हैं और न ही अवधारणाएं हासिल करने के, पढ़ पाने की क्षमता के अर्थ को ध्यान से खंगालते हैं। वे यह बयान नहीं करते कि बच्चों ने क्या कर लिया। साथ ही यह भी कि बच्चे किन परिस्थितियों से आते हैं। क्या हम परीक्षण रोक कर स्कूल व बच्चों को समझेंगे, उन्होंने स्कूल आने से क्या हासिल किया है और उसे कैसे आगे बढ़ा सकते हैं? क्योंकि असल में तो वह कई बात ऐसी जानते हैं जो महत्त्वपूर्ण हैं। अगर हम यह कर पाएंगे तभी सीसीई हो सकेगा। हम सभी बच्चों को शिक्षा की प्रक्रिया में उनके अनुसार आगे बढ़ने का मौका दे पाएंगे। सीसीई बंद करना अभी उसकी भ्रूण हत्या के समान है। उसे ढांचे ने समझा ही नहीं और न ही शिक्षक व स्कूल को उसके लिए सक्षम व जिम्मेदार बनाया। इसका पहला कदम शिक्षक व स्कूल पर विश्वास करना होगा, उन्हें अहम् और जोश के साथ पहल की छूट देनी होगी। ◆

लेखक परिचयः विद्या भवन सोसायटी में शैक्षिक सलाहकार, देश भर में स्कूली शिक्षा को बेहतर बनाने की दिशा में सक्रिय रूप से संलग्न हैं। वर्तमान में अजीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी, बैंग्लोर से जुड़े हुए हैं।